International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 52-54

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 52-54
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-01-2017
Accepted: 05-02-2017

डॉ. हरिहरानंद शर्मा
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. हरिहरानंद शर्मा
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

कविता के सामाजिक संदर्भ और विजेन्द्रः बनते मिटते पाँव रेत में कविता संग्रह के संदर्भ में

डॉ. हरिहरानंद शर्मा

सारांश
साहित्य समाज की मनोभावना का दर्पण है। इसमें व्यक्ति और समाज के समष्टिगत विषयों का संकलन होता है। कवि या साहित्यकार अपने भोगे हुए सार्वजनिक संदर्भो को अनुभूत कर संचयी संभावनाओं को अपनी सर्जना में प्रकट करता है। यह प्रकटीकरण समाज और व्यक्तियों की वस्तुगत स्थितियों की विवेचना करता है। समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर विजेन्द्र ने सामाजिक मूल्यों और अनुभवों को अपनी कविता में अंकित किया है। जिनका मूल्यांकन अभी तक व्यापक तौर पर नहीं हो सका है। प्रस्तुत शोध आलेख उन्हीं सामाजिक सन्दर्भो में विजेन्द्र की कविता का मूल्यांकन है।

कूटशब्दः कविता और समाज, समकालीनता, श्रम सौन्दर्य, जनपक्षधरता

प्रस्तावना
समाज मानव के परस्पर निर्भरता और सहयोग से विकसित संस्था है जिसमें प्रत्येक मनुज अपने योगदान से एक स्वस्थ समाज का निर्माण करता है। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण मानव को 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'[1] के द्वारा संदेश देते हैं कि परस्पर एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। परंतु मनुष्य के तर्क और बुद्धि की अतिरेक लिप्सा के कारण समाज में परस्पर सहयोग का भाव निरंतर विघटित होता जा रहा है। रचनाकार जब समाज की संस्कृति के इस ह्रास को अनुभव करता है तो अपने उपकरण के माध्यम से जन जागरण का महनीय दायित्व निर्वहन करता है। यही दायित्व साहित्य के निर्माण का हेतु कहा जाता है। दायित्व बोध की इस प्रवृति को पुरूषोत्तम प्रशांत ने 'सोद्देश्य कर्म प्रक्रिया'[2] माना है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य जीवन को सरल, सहज और संवेदी बनाकर स्वस्थ समाज का निर्माण करना होता है। वेद प्रकाश अमिताभ ने लिखा है–''साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है – मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाना एक अच्छा इन्सान बनाना।'[3] इस प्रकार साहित्य समाज के यथार्थ का उद्घाटन करने के साथ साथ सामान्य जन के प्रति संवेदनशील और दायित्व से पूरित होता है, और साहित्यकार की यही दायित्व भावना उसकी रचना को युगीन संदर्भों से जोडती है। मैनेजर पांडेय के शब्दों में ''साहित्य के रूप, उददेश्य और विकास का सामाजिक विकास से गहरा संबंध है। साहित्य मानव समाज के विकास का परिणाम है और प्रमाण भी । वह मनुष्य की सामाजिक चेतना की उपज है और सामाजिक चेतना का उपजाने वाला भी।''[4] इस प्रकार रचनाकार अपने समाज से तद्युगीन संदर्भो से जुडकर एक ऐसे साहित्य का निर्माण करता है जो समाज का समग्र प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने के साथ साथ समाज को मार्गदर्शित भी करता है।

कवि विजेन्द्र भी इस क्रम में अपनी कविता के माध्यम से जन के प्रति अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करते है। मैनें उनकी कविता संग्रह बनते मिटते पांव रेत में के संदर्भ में समाज की वर्तमान व्यवस्थाओं में जीवन को देखने और चिंतन करने का प्रयास किया है विजेन्द्र ने मनुष्य की स्वतंत्रता, समता के पक्ष में अपनी कविता लिखी है। वे अपने समय और समाज से जुडकर मनुष्य के संघर्ष को वाणी देते है। मानव के विकास और बेहतर सुविधाओं के लिए उनका कवि मन सदैव पक्षपाती रहा है। संघर्षशील मनुष्य की जिंदगी के हर पक्ष को छूने वाले विजेन्द्र की कविताओं में समाजगत विसंगतियो, सामाजिक विषमताओं, शोषण, दमन, अत्याचार, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, दरिद्रता और दीन हीन दशा का यथार्थ चित्रण किया है ।

विजेन्द्र की कविता का केन्द्र मनुज है। आजादी के समय नेतृत्वकर्ता ने यह भरोसा दिया था कि भारत में स्वराज होगा हमारे अपने लोग हमारे संविधान में निहित मूल्यों के अनुगमनकर्ता होगें।

जनता का शासन होगा सबको समान अवसर और अधिकार मिलेगें। लोकतंत्र की स्थापना हम सभी के लिए एक नये सूर्योदय को जन्म देगी जिसमेंस्वतंत्रता, समता और बंधुत्व जैसे मूल्यों की रक्षा की जाएगी, परंतु भारत में अल्प समय के उपरांत ही इस व्यवस्था से लोगों का विश्वास डिगा। लोगों ने अनुभव किया कि हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था धनिकों, और बाहुबलियों के हाथों मे चली गयी है। मानवता हाशिए की ओर जा रहीं है। लोकतंत्र में मनुज ठगा गया है–

'लोकतंत्र हमने लड़ के लिया है
सुना था अब पाँव पे पाँव कोई न धरेगा।
बकरी और शेर एक घाट पर पानी पियेगें
पता लगा ये मुनादी चालाक स्यारों ने
मिलके करायी थी।'[5]

विजेन्द्र अपने समय और समाज से जुड़े हैं। वे दुनिया में फैलती बाजारवादी अपसंस्कृति को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता मूल्य, नैतिकता, आदर्श आदि महान मूल्यों को यह उपभोक्तावादी संस्कृति कुचलती जा रही है। प्रचार प्रसार की इस मोहक लुभावनी और विज्ञापित संस्कृति ने जनता के दिमाग में केवल वस्तु उपभोग को महिमामंडित किया है। खडा हूँ चौराहे पर

कहाँ जाउ, किधर –
इन में से
कोई नहीं वो पथ
जिस पर आया हूँ चलकर।[6]

खरीदारों को उकसाना, बनावटी आवश्यकता बनाना और इस सबके लिए नारी को इस्तेमाल करना इनका काम बन गया है। प्राचीन काल से लेकर आज तक उसे दूसरे पायदान पर रखा जाता रहा है। इतना ही नहीं यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता कहने वाले समाज में भी स्त्री उपेक्षिता ही रही। अन्य धर्मो में भी यही स्थिति बनी रही। यह सही है कि आजाद मुल्क में संविधान ने नारी को पूरी स्वतंत्रता और समानता के अधिकार दिए हैं, किंतु आज भी रोजाना के अखबार में कोई ना कोई खबर नारी असमानता के प्रमाण इस समाज को दे देती है। विजेन्द्र का मानना है कि नारी को मानव समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। वे समाज के विकास में नारी का योगदान स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में नारी के शोषण और दमन का यथार्थ चित्रण किया हैपरंतु वे इस दमन और शोषण की खिलाफत करते है। वे समाज को नारी सम्मान के लिए प्रेरित करते हुए कहते है कि नारी राष्ट्र की अस्मिता और पहचान हैं। सामाजिक परिस्थितियों में उसे आत्मविश्वासी बनाना अत्यंत आवश्यक है

देख देख जीवन की लीलाएं
इतनी टूट चुकी हूँ
हर समय लगा रहता भय
कोई मुझसे छीन न ले
जो बचा रह गया
आलोक आँख का
इस घने अंधेरे बीहड़ में।[7]

संविधान में भले ही सब समान हैं पर धरातल पर विसंगतियों को देखा जा सकता है इन विसंगतियों के लिए आंदोलन और क्रांतियों का आह्वान होता आया है लेकिन कभी कभी साम्राज्यवादी या पूँजीवादी ताकतों के बढते वजूद के कारण सफलता नहीं मिलती और निराशा घर कर लेती है। क्रांतिपथ पर आगे बढने वाला आदमी विवशतावश पलायन को मजबूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसका मनोबल और साहस बढाने का काम विजेन्द्र की कविता करती है। दादी माई कविता में दादी अनेक सामाजिक आर्थिक विचलनों के बावजूद अपने आत्मविश्वास को कायम रखती है । वह कहती है

'भौत भरोसो है अपने ऊपर
मौत भी डर माने है मोसूं
आयेगी भी तो क्या लेगी मों सूं
जब तलक जीनौ है
ये आंच पिऊँगी
लेकिन सर नीचा कर
नहीं रहूँगी
नहीं रहूँगी ।'[8]

समाज के शोषित और पीड़ित में जब चेतना जाग्रत होती है उसे अपनी दशा का ज्ञान होता है और वह क्रांति के लिए तैयार हो जाता है। इस मेहनतकश और श्रमजीवी वर्ग में क्रांति की चेतना जाग्रत करने का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य समाज का बुद्धिजीवी वर्ग करता है। इस वर्ग की भूमिका पर ही क्रांति सफल होती है। परंतु कुछ बुद्धिजीवी धन, मान, पद, पुरस्कार के कारण अवसर पाकर प्रभु वर्ग का हो जाता है ऐसे में जन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता धूमिल हो जाती है। वह समाज के दुखों से दूर हो जाता है, और उसकी कविता शिथिल और निष्क्रिय हो जाती है –

ओह.....
क्या करूँ इन कविताओं का
छंदों का, लय का, यति का
जिनमें कहीं नहीं दिखते चित्र
लड़ती जनता के।[9]

विजेन्द्र वर्तमान सामाजिक संदर्भ में संगठन की ताकत के अभाव को महसूस करते है। भारत को आजादी संगठन की देन है। गाँधी, सुभाष, नेहरू, आजाद, तिलक, लाला लाजपतराय, भगतसिंह आदि सभी नेतृत्वकर्ताओं ने संगठित होकर मुकाबला किया और देश को आजादी मिली। संवैधानिक और सामाजिक समानताओं के विधिसम्मत निर्णय होने के बावजूद आज भी देश में किसान मजदूर श्रमिक के शोषण, अत्याचार, गरीबी, भ्रष्टाचार रूकने का नाम नहीं ले रहे हैं। ऐसे में कवि उस उपेक्षित समाज से पुनः संगठित होकर लड़ने के लिए आह्वान करता है। विजेन्द्र का मानना है कि उपेक्षित और वंचितों को संगठित होना होगा–

'संगठन ही आज की कविता का प्राण ळे
उभरती जनशक्ति उसकी जैविक लय।'[10]

कवि ने अपनी कविता की भाषा को जनभाषा माना है। यह भाषा जन में चेतना का संचार करती है अच्छे बुरे की पहचान कराती है। लोक से सम्बद्ध इस भाषा के द्वारा समाज को जागरित करने की चेष्टा कवि ने की है। इनकी भाषा सामाजिक वंचित के अधिकारों की पक्षपाती है–

भूख में छंद टूटता है
कविता कनसुरी होती है
लय भ्रमित।[11]

वे जनविरूद्ध कविता को कविता के प्रतिष्ठित स्थान पर नहीं रखते हैं। उसे मूल्यहीन मानते है।

'पहचान कविता की पहली शर्त है
जो शब्द रचो वो तुम्हारा ही लगे।'[12]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विजेन्द्र की कविता का केन्द्र वह समाज है जो आज भी अभावो में जीता है, खपता है और मर जाता है। केवल वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया जाने वाला यह तबका आज भी स्तरीय जीवन का केवल सपना ही देख पाता है । कोई भी सत्ता और व्यवस्था उसके प्रति संवेदनशील नहीं है। कवि ने देश के इस सामान्य जन के जीवन यथार्थ, उसकी जिजीविषा, उसकी अभावग्रस्त जिन्दगी, सामाजिक विसंगति और विद्रूपताओं में उसकी दीन हीन दशा, पूंजीवादी व्यवस्था में उस पर होने वाले अन्याय, और अत्याचार, खोखली जनतांत्रिक व्यवस्थाओ, बुद्धिजीवियों और कवियों की अवसरवादी प्रवृतियों सामान्य जन के मन में व्यवस्था के खिलाफ सुलगती आक्रोश की भावना का यथार्थ चित्रण कर समाज के वंचितों और उपेक्षितों के संगठित होने एवं उसके श्रम को सौन्दर्य का प्रतिमान बनाकर कवि ने अपने सामाजि दायित्व को पूरा किया है। विजेन्द्र का मानना है कि संगठित हुए बिना यह संघर्ष खत्म नहीं होगा। कवि परिवर्तनकामी है और समाज को परस्पर सहयोगार्थ मन बनाने का संकल्प दिलाना चाहता है–

'हम बदलें अपने को पहले
तभी और भी बदलेंगे
यह दुनिया बदलेगी
मैं हूं सबसे आगे।''[13]

संदर्भ

1. भगवद्गीता गीताप्रेस गोरखपुर पृ. 72 संवत 2060
2. हिन्दी साहित्यः इक्कीसवीं सदी की चुनौतियॉ, पुरूषोत्तम प्रशांत का लेख, सं. डॉ कीर्ति केसर पृ.67, नवराज प्रकाशन दिल्ली 2002
3. हिन्दी साहित्य : इक्कीसवीं सदी की चुनौतियॉ, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का लेख, सं. डॉ कीर्ति केसर पृ.150, नवराज प्रकाशन दिल्ली 2002
4. शब्द और कर्म, मैनेजर पांडेय, पृ. 32, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 1997
5. किसानों की सभा कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.53, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
6. पथकविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.17, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
7. मैं चातक हूं, कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.90, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
8. दादी माई कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.120, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
9. बनते मिटते पांव रेत मे कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.29, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
10. किसानों की सभा, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.51 – 52, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
11. भूख कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ.54, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
12. किसानों की सभा कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ. 52, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013
13. लोग भूले नहीं हैं कविता से, बनते मिटते पॉव रेत में (कविता संग्रह) विजेन्द्र, पृ. 86, वाड्मय प्रकाशन, जयपुर 2013